International Journal of Sanskrit Research 2016; 2(2): 15-19

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2016; 2(2): 15-19
© 2016 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 22-01-2016
Accepted: 25-02-2016

**उमेश चन्द्र जोशी**
एम, फिल, (शोधच्छात्र )
संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

**Correspondence**
**उमेश चन्द्र जोशी**
एम, फिल, (शोधच्छात्र )
संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

# द्वैताद्वैत वेदान्त में ब्रह्म.तत्त्व विमर्श

**उमेश चन्द्र जोशी**

**शोध सार -** वैष्णव सम्प्रदाय के प्रमुख वेदान्तिकवादी दर्शनों में निम्बार्क दर्शन द्वैताद्वैतवादी विचारधारा का प्रतिपादन करता है । ईश्वर, जीव व जगत् के मध्य भेदाभेद सिद्ध करते हुए द्वैत व अद्वैत दोनों की समान रूप से प्रतिष्ठा करना ही निम्बार्क दर्शन की प्रमुख विशेषता रही है । द्वैताद्वैतवादी विचारकों ने अद्वैत-वेदान्त सम्मत अभेदवाद का दूषण कर भेदवाद की स्थापना की है । अत: तत्त्व मीमांसा की दृष्टि से भी इस सम्प्रदाय के दार्शनिकों का चिन्तन प्राय: भेदाभेद-वाद (द्वैताद्वैत) पर आधारित है । ब्रह्म तत्त्व के सन्दर्भ में द्वैताद्वैतवादियों का मत है कि-सच्चिदानन्द ब्रह्म (परमेश्वर) अनन्त गुणों से युक्त होने के कारण सगुण साकर रूप में है यद्यपि उसके सगुण साकार व निर्गुण निराकार रूप में तत्त्वत: भेद भी निम्बार्क दार्शनिकों को अस्वीकार्य है । ब्रह्म, जीव व जगत के संबन्ध को भी धर्मत: व स्वरूपत: इस विचारधारा में भिन्नाभिन्न सिद्ध करने यत्न किया गया है । परिणामवादी निम्बार्क दर्शन के अनुसार "भगवान पुरूषोत्तम रमाकान्त" अशेष, कल्याण गुण संपन्न होने से जगत के अभिन्ननिमितोपादान कारण हैं तथा मुमुक्षुओं द्वारा भी उनका यही स्वरूप उपास्य है । उनका मत है कि- परमेश्वर ब्रह्म स्वयं को (चतुर्व्यूह) अर्थात् "वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरूद्ध" इन चार रूपों मे प्रकाशित करता है । इस प्रकार के विभिन्न तथ्यों को निम्बार्क दार्शनिक श्रुति, स्मृति व उपनिषदोक्त प्रमाणों द्वारा सिद्ध करने का सफल यत्न करते हैं । प्रस्तुत पत्र में भी सामान्यतया द्वैताद्वैत-सम्मत ब्रह्म-तत्त्व विषयक अवधारणा प्रतिपादन करने का यत्न किया गया है ।

**"वैष्णव वेदान्तों में द्वैतादैतवादी दर्शन**

वैष्णव परम्परा के विविध वेदान्तिकवादी दर्शनों में रामानुज के विशिष्टाद्वैतवादी, निम्बार्क के द्वैताद्वैवादी, मध्वाचार्य के द्वैतवादी, तथा वल्ल्भाचार्य के शुद्धाद्वैतवादी सिद्धान्तों का प्रमुख योगदान रहा है । इन आचार्यों के अतिरिक्त भी चैतन्य महाप्रभु, जीव गोस्वामी,तथा वलदेवविद्याभूषणादि अचार्यों का वैष्णव वेदान्त-परम्परा में उल्लेखनीय स्थान है । इन प्रमुख वैष्णव वेदान्तों में द्वैताद्वैतवादी दर्शन के प्रतिष्ठापक आचार्य निम्बार्क हैं । यद्यपि द्वैताद्वैत सम्प्रदाय में गुरुपरम्परानुसार हंस, सनकादि तथा नारद के पश्चात निम्बार्काचार्य का चतुर्थ स्थान है । तदपि इस सम्प्रदाय ने हंस भगवान के नाम से नहीं अपितु आचार्य निम्बार्क के नाम से ही प्राय: प्रतिष्ठा प्राप्त की है । इसका कारण आचार्य निम्बार्क द्वारा द्वैताद्वैत सम्प्रदाय के आधारभूत विविध ग्रन्थों का प्रणयन करना ही प्रतीत होता है ।

**आचार्य निम्बार्क की ग्रन्थ सम्पदा इस प्रकार है** १ वेदान्तपारिजातसौरभ २ वेदान्तकामधेनु दशश्लोकी ३ प्रपन्नकल्पवल्ली ४ मंत्ररहस्य षोडषी ५ प्रपत्तिचिन्तामणि ६ गीतावाक्यार्थ ७ सदाचार प्रकाश ८ राधाष्टकम् ९ कृष्णाष्टकम् १० प्रात:स्मरणस्तोत्रम् । निम्बार्क के इन्ही ग्रन्थों पर द्वैताद्वैत सम्प्रदाय की नीव स्थिर है । इन ग्रन्थों में से प्रतिपत्तिचिन्तामणि, गीतावाक्यार्थ,और सदाचारप्रकाश,प्राय:अनुपलब्ध हैं । "प्रपत्ति चिन्तामणि" तथा "सदाचार प्रकाश "निम्बार्क-कृत इन दो ग्रन्थों का उल्लेख "वेदान्त रत्न मंजूषा" में श्री पुरूषोत्तम आचार्य ने किया है ।[1]

डॉ. अमरप्रसाद भट्टाचार्य द्वारा लिखित" निम्बार्क ओ द्वैताद्वैत दर्शन" में प्रदत्त गुरुपरम्परा की तालिका में हंस भगवान से लेकर अब तक ५६आचार्यों का उल्लेख किया है[2] । इसी से द्वैताद्वैत परम्परा के समृद्ध इतिहास का अनुमान हो जाता है ।

[1] वेदान्त रत्न मञ्जूषा,पृ० ९७चौ..।

[2] श्रीनिम्बार्क ओ द्वैताद्वैतदर्शन' बंगला पृ ५४-५५

तदपि यहां संपूर्ण परम्परा का उल्लेख न कर, सम्प्रति द्वैताद्वैत सम्प्रदाय के कतिपय प्रमुख आचार्यों तथा उनके ग्रन्थों की चर्चा करना ही उचित होगा । जिन्होंने येन केन प्रकारेण इस सम्प्रदाय को पल्लवित किया है । उन प्रमुख आचार्यों में निम्बार्क के शिष्य श्रीनिवासाचार्य हैं इन्होंने-वेदान्तपारिजात की व्याख्या (वेदान्त कौस्तुभ) की रचना की तथा "लघुस्तवराजस्तोत्रम्", श्री गुरुभक्तिमन्दाकिनी, गीताभाष्य एवं कठोपनिषद् भाष्य, नामक ग्रन्थों का प्रणयन किया है । द्वैताद्वैत सम्प्रदाय के ही अचार्य केशव काश्मीरी भट्ट ने श्रीनिसावाचार्यकृत वेदान्तकौस्तुभ पर (वेदान्तकौस्तुभ प्रभा) नामक वृत्ति ग्रन्थ लिखा इसके अत्तिरिक्त (उपनिषद् प्रकाशिका) नामक -द्वादश उपनिषद् भाष्य, तत्त्वप्रकाशिका, नामक गीता व्यख्या, क्रम प्रदीपिका नामक वैष्णवतन्त्र ग्रन्थ, तथा विष्णुसहस्रनाम टीका, एवं अनेक भागवत स्तोत्रों की रचना की है । निम्बार्क सम्प्रदाय के ही पुरूषोत्तमाचार्य ने निम्बार्ककृत दशश्लोकी पर" वेदान्त रत्नमञ्जूषा"नाम की विस्तृत टीका लिखी, इसी परम्परा में पण्डित पुरूषोत्तम प्रसाद (प्रथम) ने' सविशेष निर्विशेष-श्रीकृष्णस्तवराज को आधार बनाकर 'श्रुत्यन्तकल्लपवल्ली नाम की टीका लिखी । निम्बार्कदर्शन के आचार्य " माधवमुकुन्द देवाचार्य-ने 'अध्यासपरपक्षगिरिवज्रम्' नामक महत्वपूर्ण ग्रन्थ की रचना की इसमें अद्वैतवाद के विभिन्न विषयों का खण्डन भी किया है ।

इसके अतिरिक्त-औदुम्बराचार्य, श्रीदेवाचार्य, श्री संकर्षणदेव, अनन्तराम, श्रीरामचन्द्र गौड, श्री दुलारे प्रसाद शास्त्री, प्रभृति आचार्यों का भी द्वैताद्वैत वेदान्त की परम्परा को समृद्ध करने में अपना विशिष्ट योगदान रहा है ।

**"द्वैताद्वैतवाद के सिद्धान्त"-** द्वैताद्वैतवादी दर्शन में ब्रह्म के स्वरूप को जानने से पूर्व इसके सिद्धान्तों का संक्षिप्त परिचय प्राप्त कर लेना आवश्यक होगा । निम्बार्क दर्शन में चित, अचित,एवं ईश्वर, रूप से तत्त्वों के तीन प्रकार हैं । यहाँ चित तत्त्व जीव व अचित तत्त्व जगत का बोधक है । आचार्य निम्बार्क के अनुसार ईश्वर, जीव व जगत में परस्पर आश्रयाश्रित भाव सम्बन्ध है । जीव व जगत, ईश्वर के आश्रित हैं तथा ईश्वर आश्रय है । यहां रामानुज के मत के समान इन तीनों में विशेषण विशेष्य भाव सम्बन्ध न होने से द्वैताद्वैतवादी दर्शन के कुछ तथ्यों का विशिष्टाद्वैत से विरोध होना भी स्पष्ट ही है । निम्बार्क के अनुसार ईश्वर, जीव, व जगत में अभेद तथा भेद दोनों ही स्थितियाँ होती हैं । यथा जीव तथा जगत के आश्रित्त्वादि स्वभाव एवं अचेतनत्वादि विशेषणों के, ईश्वर के आश्रयत्वादि स्वभाव व कल्याण विशेषणों के विरुध होने के कारण ईश्वर जीव व जगत का भेद स्पष्ट प्रतीत होता है । परन्तु जगत व जीव की सत्ता आश्रयरुप ईश्वर के विना असम्भव है । इस दृष्टि से जीव, जगत व ईश्वर में अभेद भी स्पष्ट प्रतीत होता है । अत: इश्वर, जीव व जगत में द्वैताद्वैतवादी दार्शनिकों के मत में भेदाभेद है[3]। यथा जल की लहरें व सूर्य की किरणें जलादि से भिन्न व अभिन्न दोनों ही हैं । अत: द्वैत व अद्वैत उभय रूप भी सत्य ही हैं । तथा द्वैत और अद्वैत दोनों की प्रतिपादक श्रुतियां भी सत्य हैं ।

**"निम्बार्क- दर्शन में भेदवाद"—**निम्बार्क दर्शन के अनुसार सम्पूर्ण विश्व अर्थात जीव जगत ब्रह्म से भिन्नाभिन्न है । ब्रह्म में भेद होते हुए भी वह अभेद स्वरुप है । यद्यपि यहां भेद व अभेद दोनों ही सत्य है तथापि भेदवाद की स्थापना करते हुए निम्बार्क दार्शनिक बहुधा अद्वैत के अभेदवाद का खण्डन करते हैं । भेद का समर्थन करते हुए निम्बार्क संप्रदाय के अचार्य "माधव मुकुन्द " अद्वैत वेदान्तियों के भेद विषयक आपत्तियों की निर्मूलता प्रतिपादित करते हुए कहते हैं कि-भूतलत्वादिना निरपेक्षत्वेऽपि अधिकरणत्वेन सापेक्षत्वेक्षतेरभावात् [4]। उनके अनुसार एक वस्तु किसी रुप में सापेक्ष होने पर अन्य रुप में निरपेक्ष भी हो सकती है । यथा भूतल में घट भेद पक्ष में- भूतल भूतलत्वरुप में निरपेक्ष है किन्तु घट भेद के अधिकरण के रुप में भूतल सापेक्ष भी हो सकता है । आचार्य" माधव मुकुन्द" का तर्क है कि – अद्वैतवादियों द्वारा भेद स्वीकार नहीं किए जाने की स्थिति में उनको स्वपक्ष व परपक्ष में भेद ज्ञान नहीं होगा । इस स्थिति में वह स्वपक्ष का समर्थन व पर पक्ष का दूषण नहीं कर पायेंगे । माधव मुकुन्द का पुन: आक्षेप है कि- अद्वैत मत में भेद स्वीकार न करने की स्थिति में स्वप्रकाश ब्रह्म से अस्वप्रकाश ब्रह्म का प्रपंच भी संभव नहीं है । अर्थात सत्य, मिथ्या भेद भी संभव नहीं हो सकेगा । इस अवस्था में प्रपंच के साथ ब्रह्म का अभेद सिद्ध हो जएगा तथा ब्रह्म भी प्रपंच के समान मिथ्या या सत्य होने लगेगा । जहां आचार्य "शंकर" ने ब्रह्म सूत्र भाष्य में नित्यानित्यवस्तु विवेकादि उदाहरण द्वारा नित्यानित्य वस्तु का भेद स्पष्ट किया हैं "माधव मुकुन्द" के अनुसार वहां अद्वैतवादी भेद स्वीकार न करके, वाक्य का विरोध करते हुए प्रतीत होते हैं[5]। अत: भेद प्रमाण सिद्ध है क्योंकि भेद बाधक कोइ प्रमाण नहीं है । "माधव मुकुन्द" के मत में अनिर्वचनीय रुप में भी भेद की सिद्धि संभव नहीं है[6]।- यथा -न अनिर्वचनीय भेदो –अङ्गीक्रियते..। अत: निम्बार्क दार्शनिकों ने अद्वैतवाद द्वारा प्रतिपादित भेद –मिथ्यात्व का खण्डन कर उसको अद्वैत मत के ही प्रतिकूल सिद्ध किया है । इनके अनुसार भेदाभेद ही पारमार्थिक सत्य है । तथा गुण गुणी में भेदाभेद स्वभाविक है । जीव व जगत् ब्रह्म के आधीन हैं इसलिए कारण रूप ब्रह्म के अंश हैं । अत: स्पष्ट है कि ब्रह्म से जीव-जगत अभिन्न है तथा जीव जगत के रुप में वह ब्रह्म से भिन्न भी है यह निम्बार्क दार्शनिकों का अभिप्राय है ।

**"ब्रह्म"** -*अयमात्मा ब्रह्म, सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म*, या *एकमेवाद्वितीयम् ब्रह्म* इत्यदि श्रुतिवाक्यों में ब्रह्म के स्वरूप का प्रतिपादन प्रखर रुप में परिलक्षित होता है । उपनिषदों में ब्रह्म को जहां "शब्द, रुप रस, तथा गन्ध से रहित अविनाशी, नित्य, अनादि अनन्त, परात्पर व ध्रुव" इत्यादि कथनों से सम्बोधित किया जात है[7] । वहीं अद्वैत वेदान्त में प्रतिपादित उक्तियों में विशुद्ध आत्मा ब्रह्म है[8]। आचार्य शंकर ने सर्वं च तज्ज्ञस्वरुपं चेति सर्वज्ञम्[9]शांकरभष्य की इन उक्तियों में ब्रह्म को सर्वज्ञ भी कहा है । ऋग्वेद "पुरुष सूक्त"[10] तथा उपनिषदों में उक्त परब्रह्म परमेश्वर के "सर्वज्ञ, स र्ववित[11], स्रष्टा[12],लोकनियन्ता[13]," आदि विशेषणों से उसके सगुण रूप का भी प्रतिपादन होता हैं । यद्यपि शंकराचार्य ने भी कतिपय स्थलों पर ब्रह्म के निर्गुण व सगुण रूपमें उत्पन्न विरोध के समाधान हेतु समन्वयमूलक सिद्धान्त का प्रतिपादन किया तथा सगुण ब्रह्म की स्थापना का मुख्य प्रयोजन उपासना ही सिद्ध किया है[14]। रत्नप्रभाकार ने भी स्पष्ट किया है कि –निर्गुण ब्रह्म विद्या, तथा सगुण अविद्या का विषय है । यथा- विद्याविषयो ज्ञेयम् निर्गुणं सत्यम्, अविद्याविषय उपास्यम् सगुण कल्पितम्[15]। तदपि अद्वैत मत में निर्गुण ब्रह्म ही सर्वोच्च सत्य के रुप में स्वीकृत है । आचार्य शंकर की दृष्टि में ब्रह्म की सत्यता का तात्पर्य उसके देश कालादि बन्धनों से मुक्त होना है[16]।

---

[3] राधाकृष्णन इण्डियन फिलॉ..भाग, २,पृ.७५३

[4] अध्यास पर० प० गिरिवज्र पृ० २०।

[5] अ० पर० प० गिरिवज्र०पृ० २४।

[6] अ० पर० प० गिरिवज्र०पृ० २८।

[7] कठ. उप०१।३।१५।

[8] आत्मा च ब्रह्म... ब्र० सू० शा.भा० पृ.८१।

[9] शा० भा०गौ. का० ३। ३६।

[10] ऋग्वेद संहिता १० ।९० १,३,५।

[11] मुण्डकोपनि० १\१।९।

[12] तै० उप०,३।१।

[13] बृ० उप०,३।७।३।

[14] छा० उप० ८।१।१।,तथा ब्र०सू०शां भा०,१।१।२०,२४,३१.।

[15] रत्नप्रभा, ब्र० सू० १।१।१२।

[16] ब्र० सू, शा० भा.४।३।१४।

**"द्वैताद्वैत दर्शन में ब्रह्म"-** आचार्य निम्बार्क ने ब्रह्म को सविशेष एवं सगुण रूप में वर्णित करते हुए उसे अनन्त अचिन्त्य, स्वाभाविक स्वरुप गुणों एवं शक्तियों से युक्त बताया है । द्वैताद्वैतवादियों के मतानुसार वह बृहत्तम ब्रह्म पुरुषोत्तम रमाकान्त है । अत: तदविषयक जिज्ञासा करणीय है । निम्बार्काचार्य ने "वेदान्त पारिजात सौरभ सूत्र" में कहा है कि अनन्त गुणों से युक्त ब्रह्म जिज्ञासा का विषय है-

यथा- अनन्ताचिन्त्य स्वाभाविक स्वरुपगुण शक्त्यादिभिर्बृहत्तमोयो रमाकान्त: पुरुषोत्तमो ब्रह्मशब्दाभिधेयस्तद् विषयिका जिज्ञासा –सततं सम्पादनीया[17], श्रीनिवासाचार्य ने भी वेदान्त कौस्तुभ के "विषयश्चास्य ब्रह्मादिशब्दाभिधेय:[18]" इत्यादि उक्तियों में ब्रह्म शब्द से अभिधेय विषय की जिज्ञासा का समर्थन किया है । द्वैताद्वैत दर्शन में ब्रह्म अनन्त गुणों से सम्पन्न है तथा गुण व गुणी का नित्य सम्बन्ध है । अत: जहां ब्रह्म को निर्गुण कहा है प्राय: वहां उसके असीम गुणों का होना ही कारण है । निर्गुण ब्रह्म से तात्पर्य है कि-उसके गुणों की इयत्ता नही पाई जा सकती अत: निर्गुण बोधक वाक्यों का तात्पर्य द्वैताद्वैत मत में इयत्ता निषेधपरक ही बोधब्य है । इसी तथ्य को वेदान्त पारिजात सौरभ सूत्र में इस प्रकार परिभाषित किया है- न चैवं विषय निषेध पराणां बाध: शकनीयस्तेषां ब्रह्मस्वरुपगुणादि विषयकेयत्ता निषेधपरत्वेन समविषयत्वात्[19]। "ध्यातव्य है कि- अद्वैत वेदान्त में ब्रह्म सच्चिदानन्द है किन्तु सत् चित् व आनन्द ब्रह्म के गुण न होकर ब्रह्म रूप ही हैं । इनको गुण मानने पर इनका ब्रह्म के साथ गुण गुणी संबध मानना पडेगा तथा उस संबध को संबधित करने हेतु अन्य संबध मानने से अनवस्था दोष का होना स्वाभाविक है । अत: अद्वैत मत मे सतादि पद स्वयं में सार्थक होते हुए भी ब्रह्म रुप के बोधक हैं।

वस्तुत: मुख्य तथ्य यह है कि-उपनिषदों में उपलब्ध ब्रह्म विषयक श्रुतियों में जहां अद्वैत वेदान्ती सगुण परक श्रुतियों की संगति निर्गुण ब्रह्म से करते हैं वहीं निम्बार्क दार्शनिक निर्गुण परक श्रुतियों की संगति ब्रह्म की सगुण परकता से करते हैं । यद्यपि दोनों सम्प्रदायों के आधारभूत ग्रन्थों में उपनिषद् व ब्रह्मसूत्र ही प्रमुख हैं ।

**"द्वैताद्वैत दर्शन में ब्रह्म के सगुण व निर्गुण रुप का समन्वय"-** समन्वय की दृष्टि से निम्बार्क दर्शन में ब्रह्म के सगुण व निर्गुण दोनों रुप प्राप्त हैं । ब्रह्म सर्व व्यापक है परन्तु सर्वातीत भी है अत: आकाश के समान निर्लेप होना ही उसकी निर्गुणता है । निर्गुण होने से बह समस्त गुणों का अधार भी है । यथा-

ये चैव सात्विका भावा राजसास्तामसाश्च ये । मत्त एवेति तान्विद्धि न त्वहं तेषु ते मयि[20]॥ गीतोक्त श्लोक से सपष्ट हो जात है कि- सत्व, रजसादि भाव ब्रह्म से उत्पन्न व प्रकाशित होने पर भी ब्रह्म उनसे निर्लिप्त है । ब्रह्म के निर्गुण होने में "एष आत्मा अपहतपाप्मा विजरोविमृत्युर्विशोक:'... इत्यादि श्रुतियां प्रमाण हैं तथा सत्यसंकल्प:, सत्यकाम: सर्वज्ञ: सर्ववित[21]... इत्यादि उसके सगुण रुप के प्रमाण हैं ।

वस्तुत: भारतीय ज्ञान परम्परा की यह विशेषता ही है कि उसमे सगुण साकार व निर्गुण निराकार में तात्विक दृष्टि से विरोध नहीं अपितु समन्वय ही मुख्यत: है । निम्बार्क सम्प्रदाय के आचार्य "स्वामी सन्तदास" जी ने भी महाभारत, शान्ति पर्व के तृतीय अध्याय, श्लो०३३८ में (निर्गुणाय गुणात्मने ..इस श्लोक का उल्लेख कर अपने वेदान्त दर्शन की भूमिका में ब्रह्म के सगुण व निर्गुण दोनों रूपों का समर्थन प्रस्तुत किया है[22]। उनके मत में भी सगुणत्व व निर्गुणत्व का परस्पर विरोध नहीं है । गुणी इस कथन से गुणी में गुणों का समावेश भी स्वत: हो ही जाता है । तदपि गुणों का अतिक्रमण करना भी गुणी शब्द से व्यवहृत हो सकता है ऐसा निम्बार्क दार्शनिकों का मत है । द्वैताद्वैत मत में अंश सभी अवयवों सहित अंशी में समाहित होते हैं परन्तु अंशी अंश का अतिक्रमण करके भी विद्यमान हो सकता है । इसलिए इन दोनों में भेदा- भेद संबध होने से विरोध नहीं है[23]। इस संप्रदाय में ब्रह्म संपूर्ण जीव जगत को उत्पन्न करता हुआ स्वयं जीव व जगत से अविकारी भी है । अत: उक्त मतानुसार द्वैत व अद्वैत समान रूप से सत्य हैं । द्वैत तथा अद्वैत की समान रुप से स्थापना करना ही इस संप्रदाय का उद्देश्य है ।

**" द्वैताद्वैतवाद में सच्चिदानन्द ब्रह्म, व उसका उपास्य रूप"_**

निम्बार्क दर्शन के अनुसार भी सत चित व आनन्द ब्रह्म का स्वरूप है । साथ ही सतादि उसके गुण भी हैं । रामानुज दर्शन के ही समान द्वैताद्वैत दर्शन में भी परमेश्वर ब्रह्म का स्वरूप सत विशिष्ट, चित विशिष्ट व आनन्द विशिष्ट है । एवं गुण व गुणी के समान सत्य तथा ब्रह्म का अविनाभाव सम्बंध है । यथा सूर्य प्रकाश से पृथक नहीं हो सकता तथैव सत चित, आनन्दादि गुणों की भी ब्रह्म से पृथक सत्ता अकल्पनीय है । वस्तुत: ध्यातव्य तथ्य यह है कि- जहां द्वैताद्वैत दर्शन में ब्रह्म के सतादि विशेषणों को उसके गुणों के रूप में भी स्वीकृत किया जाता है वहीं अद्वैत मत में इनको गुण नही माना जाता अपितु ब्रह्म का स्वरूप ही माना जाता है[24]।

ब्रह्म के ज्ञान गुण विशिष्ट होने से वह सर्वत्र, नित्य, ज्ञानी तथा जगत का निमित्त कारण भी है । वह सत् स्वरूप है तथा अपनी शक्ति से जगत का उपादान कारण भी है । आनन्द गुण विशिष्ट होने से वह भक्तों द्वारा प्राप्तव्य व उपास्य है । द्वैताद्वैतवादियों के मत में उस अनन्त ब्रह्म में आनन्दाधिक्य है तथा वह आनन्द साधारण नहीं अपितु परम व असाधारण है । उपनिषदों में भी उस आनन्द को यत्र तत्र परिभाषित किया हैं यथा-यो वै भूमा तत् सुखम् अस्ति. भूमैव सुखम....इत्यादि उपनिषद वाक्यों का तात्पर्य है कि- जो भूमा (महान) है उसी में सुख है क्षुद्र व अल्प में सुख का अभाव है[25] । वस्तुत: परिछिन्न तथा देश कालादि सीमाबद्ध ही अल्प है तथा अल्प होने से वह आनन्दादि से रहित है । श्रुतियों में आनन्द[26] से संपूर्ण भूतों की उत्पत्ति मानी गयी है । अत: ब्रह्म आनन्दादि गुणों का आधार है इस तथ्य में भी प्राय: असंगति नहीं है । इसी प्रकार "एकमेवाद्वितीयम् ब्रह्म ".इत्यादि वाक्यों में वेदान्त सम्मत अर्थ निम्बार्क दार्शनिकों को अभीष्ट नहीं है । इस वाक्य का द्वैताद्वैत मत में तात्पर्य है कि-ब्रह्म सर्वोपरि सत्ता के रुप में एकमात्र सत्य है जिसे द्रव्य भी कह सकते हैं । इस अर्थ में वह एक व अद्वितीय है । **डॉ**० अभेदानन्द भट्टाचार्य ने अपने शोध प्रबन्ध "अद्वैत एवं द्वैताद्वैत दर्शन" में कहा है कि-" एक व अद्वितीय का तात्पर्य ब्रह्म के जीव जगतादि गुणों से रहित होना नही है । निम्बार्क दर्शन के अनुसार जीव व जगत रूपी गुण तो अनिवार्य रूप से ब्रह्म में स्थित हैं । क्योंकि गुणी में गुण होते हैं तथा गुणी गुणों को अपने भीतर समाहित करता है । अत: गुणों के रहने पर भी गुणी एक ही है । इस अर्थ में ब्रह्म एकमेवाद्वितीय है[27]।

ब्रह्म का उपास्य स्वरूप कैसा होना चाहिए ?तथा किस प्रकार का ब्रह्म मुमुक्षुओं द्वरा आप्तव्य है?इत्यादि प्रश्नों के उत्तर में निम्बार्क दार्शनिकों का मत है कि-अशेष कल्याण संपन्न परब्रह्म श्री कृष्ण ही मुमुक्षुओं द्वारा उपास्य है । त्था मोक्षप्राप्ति हेतु भी भगवत कृपा शक्ति ही सर्वोपरि है । निम्बार्क दार्शनिकों के मत में जीव के मानस में मुमुक्षुत्व जाग्रत होना तथा वैराग्य उतपन्न होना भी भगवत कृपा का ही परिणाम है[28] । अत: निम्बार्क दार्शनिक- गण ब्रह्म को अशेष, कृपालु आदि रुपों

[17] वेदान्त पारिजात सौरभ सूत्र, पृ०१।१।१।

[18] वेदान्त कौस्तुभ, पृ० १।१।१। श्रीनिवासाचार्य

[19] वेदान्त पारि० सौ० सू पृ०१\ १।४ तथा वेदान्त रत्न मंजूषा श्लो०४।

[20] गीता ७।१२।

[21] छा० उप० १।८।५।

[22] वे० द० पारिजात सौरभ, भूमिका-स्वामी अनन्तदास,पृ०२२।

[23] वे० द० पारिजात सौरभ, भूमिका-स्वामी अनन्तदास,पृ०२२।

[24] अद्वैत एवं द्वैताद्वैत दर्शन अभेदान्नद भट्टाचार्य-पृ०१५९।

[25] वेदान्त दर्शन स्वामी सन्त दास पृ०१२१,१२२।

[26] तै० उ० ब्रह्मानन्दवल्ली

[27] अद्वैत एवं द्वैताद्वैत दर्शन,० अभेदानन्द भट्टाचार्य,पृ०१६०।

[28] श्रुत्यन्त कल्पवल्ली,पृ०१४२।

में वर्णित करते हुए ब्रह्म साक्षातकार में मुक्ति, भक्ति, तथा भगवत कृपा को ही आधार मानते हैं । एवं उक्त विषयक श्रुति व स्मृतियों के उद्धहरणों द्वारा बहुधा अपने तथ्यों को स्पष्ट भी करते हैं । गीता के कतिपय स्थलों में ये उदाहरण पुष्ट होते दिखते हैं यथा-सर्वधर्मान परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज:[29].. तथा तमेव शरणं गच्छ..[30] इत्यादि श्लोकों में ब्रह्म के उपास्य रुप का प्रतिपादन दृष्टव्य है । अत: द्वैताद्वैतवादी दार्शनिकों के मत में अनन्त कल्याणादि गुण युक्त परब्रह्म ही सर्वथा उपास्य है । इस मत में सत्ता की दृष्टि से ब्रह्म सभी कारणों का कारण है, अर्थक्रिया की दृष्टि से सभी कार्य रुपों में विद्यमान है तथा आदर्श की दृष्टि से वह भक्तों द्वारा उपास्य व प्राप्य है । अत: इस परब्रह्म के उपास्य रुप की अपेक्षा कर मात्र ज्ञान रुप से मोक्ष प्राप्ति का समर्थन निम्बार्क दार्शनिक प्राय: नहीं करते हैं ।

**"द्वैताद्वैत दर्शन में ब्रह्म जीव, एवं जगत का सम्बन्ध"-** निम्बार्क दार्शनिकों के मत में ब्रह्म, जीव व जगत स्वरूपत: तथा धर्मत: भिन्नाभिन्न हैं । ब्रह्म का- कारण, शक्तिमानव अंशी होना, तथा जीव व जगत का- कार्य, शक्ति व अंश होना तो प्राय: सिद्ध ही है । परन्तु द्वैताद्वैत मत में कार्य एवं कारण अंश तथा अंशी, भिन्नाभिन्न हैं । यथा—मृत पिण्ड कारण का घट कार्य है तथा घट के मृत्तिका रूप होने से वह मृत्तिका से अभिन्न है । धर्मत" भी कार्य कारण से भिन्नाभिन्न है । यथा—घट का धर्म कम्बुग्रीवादिमत्व तथा कार्य जलाहरणादि है । इस प्रकार मृत पिण्ड से घट के धर्म व कार्य भिन्न हैं । तदपि मृत्तिका रूपी धर्म के दोनों मे समान रुप से विद्यमान होने से भी धर्मत: कारण से कार्य भिन्नाभिन्न रुप मे देखा जाता है । तथा कारण दृशा भी कारण कार्य से स्वरूपत: व धर्मत: भिन्नाभिन्न है । यद्यपि कारण कारण कार्य में समाहित है परन्तु वह कार्य के अतिरिक्त भी है उदाहरण दृष्ट्या—मृत्तिका के घट में निहित होने पर भी सामान्यतया मृत पिण्ड घट से भिन्न भी है । इस प्रकार निम्बार्क दर्शन में ब्रह्म, जीव व जगत का सम्बन्ध स्वरूपत: भिन्नाभिन्न है । जीव, जगत्, ब्रह्म स्वरूप होते हुए भी ब्रह्म के समान नहीं है । तदपि जीव व जगत सत्य व नित्य हैं । उक्त भेद व अभेद की समान रूप से प्रतिष्ठा करना ही निम्बार्क दार्शनिकों का लक्ष्य रहा है।

"वेदान्त कौस्तुभ प्रभा-कार" ने ईश्वर जीव व जगतादि के संबन्ध को स्पष्ट करते हुए कहा है कि-"अनन्त-गुण शक्तिमतो ब्रह्मण: परिणामि स्वभावाचिच्छक्ते: स्थूलावस्थायां सत्यां तदनन्तरात्मत्वेन तत्रावथानेऽपि परिणामस्य शक्तिगत्वात् स्वरुपे परिणामाभावात् कुण्डल दृष्टान्तो न दोषावह: अपृथक सिध्दत्वेन अभेदोऽपि भेद ज्ञापनार्थ:[31]। इसका तात्पर्य स्पष्ट है कि-ईश्वर और जगत् का संबन्ध सर्प व उसकी कुण्डली जैसा है । तथा ईश्वर और जीव का संबन्ध दीप व प्रभा सदृश भी है । (प्रभा –तद्वतोरिव) या सूर्य व उसके प्रकाश जैसा है । ईश्वर अपने में अपरिणामी रहता है तथा केवल अपनी चित शक्ति द्वारा ही चित्, अचित् रूप में परिणत होता है ।

वस्तुत: ब्रह्म, जीव व जगत में उसी प्रकार भेदाभेद ज्ञातव्य है जैसे अहि व कुण्डल में यद्यपि अहित्व व कुण्डलत्व रूप में भेद है परन्तु उसके सर्पत्व रूप में भेद नहीं है । कुण्डलरुप सर्प की स्थिति अव्यक्त की है तथा उसका लम्बायमान रूप व्यक्तावस्था का बोधक है । किन्तु व्यक्तावथा में सूक्ष्मावस्था का रहना भी स्वाभाविक ही है । अत: दोनों में स्वाभाविक भेदाभेद है यह निम्बार्क दार्शनिकों का मत है । इस सन्दर्भ में आचार्य केशव काशमीरी भट्ट ने अपने वेदान्त कौस्तुभ प्रभा नामक ग्रन्थ में लिखा है कि—जीववत् पृथक् स्थित्यनर्ह- विशेषणत्वेन अचिद्वतुनो ब्रह्मांशत्वं विशिष्ट- वस्त्वेक-देशत्वेन अभेदव्यहारो मुख्य: विशेषण-विशेष्ययो: स्वरूप स्वभाव अभेदेन च भेद व्यवहारो मुख्य:[32]। अर्थात- जिस प्रकार जीव जगत् से पृथक सत्ता नहीं रख सकते उसी प्रकार स्थूल जगत भी उससे भिन्न सत्ता नही रख सकता । जगत् इसी रूप में ईश्वर का अंश है और उसे इसी अर्थ में उससे एक माना गया है । क्योंकि जगत का धर्म ईश्वर के स्वरुप से भिन्न है इसलिए वह ईश्वर से भिन्न सिध्द होता है । निम्बार्क संप्रदाय के ही आचार्य "माधव मुकुन्द" ने इस स्वाभाविक भेदाभेद को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि- अहिकुण्डलवत कारण ब्रह्म की भिन्न रूप से प्रतीति होने पर भी वह कार्य से अभिन्न है तदपि कार्य कारणाधीन नही अपितु स्वतन्त्र है[33]।

**"निम्बार्क मत में परमेश्वर (ब्रह्म) की जगत्कारणता"—**निम्बार्क दार्शिकों के अनुसार अनन्त- गुणयुक्त सच्चिदानन्द भगवान पुरुषोत्तम ही जगत् के निमित्त व उपादान कारण हैं । जन्माद्यस्य यत:..इत्यादि सूत्रों की व्याख्या में निम्बार्क ने ब्रह्म को इस जगत की उत्पत्ति, स्थिति, व लय का कारण कहा है[34]।" यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते.. इत्यादि उपनिषद् वाक्यों मे परमेश्वर की जगत् कारणता स्पष्ट ही है । परमेश्वर ही जगत का अभिन्न निमित्तोपादान कारण है । इसी तथ्य को आचार्य माधवमुकुन्द ने इस प्रकार प्रतिपादित किया है- "भगवान् श्री पुरुषोत्तमो मुकुन्द एव जगदभिन्ननिमित्तोपादानकारणम् तत्रैव उक्त लक्षणस्य समन्वय इति सिद्धान्त:[35]। निम्बार्क आचार्यों के मत में वह अभिन्न निमित्तोपादान कारण ब्रह्म-अपनी शक्ति-विक्षेप से जगत् का उपादान तथा सर्वज्ञत्वादि गुणों से संपन्न होने के कारण निमित्त भी है । जगत् ब्रह्म का शक्ति विक्षेप रूप परिणाम है स्वरूप परिणाम नहीं । इस सिद्धान्त को वेदान्त संप्रदाय के श्री निवासाचार्य इस प्रकार प्रतिपादित करते हैं—"ब्रह्मस्वशक्तिविक्षेपेण जगदाकारं स्वात्मानं परिणम्य अव्याकृतेनस्वरुपेणशक्तिमता कृतिमता परिणतमेव भवति[36]"। अर्थात- सर्वज्ञ सर्व शक्तिमान् परमात्मा अपने स्वरूप से अप्रच्युत रहकर स्वाधिष्ठित निज शक्ति-विक्षेप द्वारा जगत् रूप में अपने को परिणत करता है । निम्बार्क दर्शन में प्रतिपादित जगत् कारण ब्रह्म सविशेष व सगुण है । उसके अनुसार ब्रह्म के निर्विशेष व निर्गुण रूप में जगत् कारणता हो यह भाव श्रुति को अभिप्रेत नही है । श्रुतियों में निहित "अशब्दमस्पर्शम्.."आदि निर्गुण बोधक वाक्यों का तात्पर्य गुणों के इयत्ताराहित्य से है तथा सर्वज्ञ: सर्ववित्, आदि वाक्यों में हम उसके गुणों की कल्पना कर सकते हैं । निम्बार्क दार्शनिकों के मत में ब्रह्म समस्त दोषों से रहित है । तथा अन्तिम सत्य के रुप में सर्वोपरि है अत: उसकी उपादान कारणता उसकी शक्ति में निहित है[37]। वहीं ब्रह्म जगत् निमित्त कारण भी है । क्योंकि इस दर्शन के अनुसार निमित्त व उपादान कारण भिन्न नहीं हैं। अर्थात् ब्रह्म दोंनों प्रकार का कारण है । ब्रह्म के अतिरिक्त अन्य किसी में भी उपादान सामग्री का बोध नहीं हो सकता, क्योंकि जगत विषयक उपादान सामग्री का बोध सर्वज्ञ परमेश्वर में ही संभव है । अत: ब्रह्म की निमित्त कारणता भी सिद्ध है[38]। ब्रह्म के निर्गुणत्व व सगुणत्व दोंनों रूपों की सत्यता सिद्ध करते हुए निम्बार्क सम्प्रदाय के आचार्य स्वामी संतदास जी ने वेदान्त दर्शन में लिखा है- "आचार्य निम्बार्क ने जो ब्रह्म को सगुण व निर्गुण इन दोनों रुपों से व्याख्यात किया है वही समीचीन सिद्ध होता है । एक ओर ब्रह्म पूर्ण स्वभाव, सर्वविद विकार रहित एक अद्वैत तत्त्व है यही उसका निर्गुणत्व है। वहीं दूसरी ओर वह सर्व शक्तिमान है तथा अपने स्वरुप को अनन्त भाव से प्रकट करके पृथक –पृथक रुपों में आस्वादन करता है—अद्वैत होकर भी बह द्वैत होता है यही उसका सगुणत्व व द्वैतत्व है[39]। अत:उसके सगुण व निर्गुण दोनों रूपों में उसकी जगत्कारणता सिद्ध है । तथा श्रुति

[29] गीता अ०१८\६६

[30] गीता अ०१८\६२

[31] वे० कौ० प्रभा -३-२-२९।

[32] वे० कौस्तु० प्रभा ३।२।३०।

[33] अध्यास पर पक्ष गिरिवज्र०पृ०६३४,३५।

[34] वे० पारि० सौ०-१।२।पृ०१।

[35] परपक्ष गिरिवज्र पृ० ४३८।

[36] वे० पारि० सौ० १।४।२६।

[37] इण्डियन फिलॉ-भाग २ पृ० ७५४।

[38] सि० जाह्नवी, पृ०१२१।

[39] वे० द० स्वामी संतदास. पृ०१००।

व उपनिषद् वाक्य भी पुरुषोत्तम ब्रह्म को ही जगत् के अभिन्न निमित्तोपादान कारण के रुप में परिभाषित करते हैं ऐसा निम्बार्क दार्शनिकों का अभिप्राय है[40]।

**निष्कर्ष-**वैष्णव वेदान्तों में प्रमुख निम्बार्क के द्वैताद्वैतवादी विचारधारा के अनुशीलन से यह सपष्ट है कि- द्वताद्वैतवादी दर्शन में ब्रह्म जीव व जगत् के मध्य भेद व अभेद दोनों ही स्थितियां संभव है । यद्यपि निम्बार्क दार्शनिक श्रुतियों व उपनिषदों में प्राप्त वाक्यों की संगति ब्रह्म के सगुण रूप से करते हुए उसके अनन्त गुणों व शक्तियों से परिपूर्ण होने का प्रतिपादन करते हैं । तथापि समन्वय की की दृष्टि से उनके मत में ब्रह्म के सगुण साकार व निर्गुण निराकार रूप में परस्पर विरोध भी नहीं है । तथा अद्वैत वेदान्त सम्मत ब्रह्म के सगुण रूप का अविद्याजन्य होना भी द्वैताद्वैतवादियों को स्वीकार्य नहीं है । परमेश्वर के "सच्चिदानन्द" स्वरूप से निम्बार्क दार्शनिकों का अभिप्राय- सत् विशिष्ट, चित् विशिष्ट व आनन्द विशिष्ट है । जहां अद्वैतवादी सतादि को ब्रह्म स्वरूप ही सिद्ध करते हैं वहीं द्वैताद्वैतवादियों के मत में सत्, चित् व आनन्द ब्रह्म के गुण हैं । भेद व अभेद की समान रूप से प्रतिष्ठा करते हुए निम्बार्क दार्शनिक ब्रह्म,जीव व जगत् में (अहिकुण्डलादिवत) भेदा –भेद सम्बन्ध अङ्गीकार करते हैं । वस्तुत: ब्रह्म जगत् का निमित्त व उपादान कारण है । यह मत अद्वैत तथा द्वैताद्वैत वेदान्तों में प्रसिद्ध है तथापि अद्वैत मत में जहां ब्रह्म अपनी माया शक्ति से जगत् का उपादान कारण है वहीं निम्बार्क दर्शन के अनुसार ईश्वर (ब्रह्म) चित् व अचित् शक्ति से जगत् का उपादान कारण है । इस परिणामवादी दर्शन के अनुसार जगत् ईश्वर के चित् व अचित् शक्ति का ही परिणाम है । वस्तुत: शास्त्रों में द्वैतवाद तथा अद्वैतवाद के प्रतिपादक अनेक वाक्य उपलव्ध होते हैं उक्त विभिन्न मतों के मध्य सामञ्जस्य स्थापित करने का एक मार्ग यह है कि- हम इस मध्यस्थ मत को स्वीकारें कि ब्रह्म, जीव व जडयुक्त जगत् से एक साथ भिन्न व अभिन्न है ।

अत: निष्कर्षतया कहा जा सकता है कि-निम्बार्क दर्शन में द्वैत व अद्वैत दोनों की सत्यता समान रूप से है । इस कारण ईश्वर (ब्रह्म) विषयक सिद्धान्तों के प्रतिपादन करते समय भी अन्य दार्शनिक संप्रदायों के मतों से द्वैताद्वैतवादी विचारधारा का कतिपय स्थलों समान या पृथक होना भी स्वाभाविक ही है।

**सन्दर्भ ग्रन्थ सूचि**


1. अद्वैतसिद्धि,-"मधुसूदन सरस्वती" निर्णय सागर प्रेस, बम्बई,१९१७।
2. ईशाद्यष्टोत्तर शतोपनिषद्,- निर्णय सागर प्रेस, बम्बई,१९२५।
3. कठोपनिषद्, प० राजकुमार शुक्ल, अनुराग प्रकाशन, माधवपुर इलाहबाद,१९८१।
4. खण्डनखण्डखाद्य,- श्री हर्ष,चौखम्बा वाराणसी,१९४०।
5. गीता शांकरभाष्यसहित, हिन्दी अनुवाद,गोरखपुर गीताप्रेस, २००९।
6. गीतातत्त्वप्रकाशिका,- केशव काश्मीरी भट्ट, वृन्दावन, किशोरदास सम्पादित, सं०१९६५।
7. छान्दोग्य उपनिषद्, –शांकर भाष्य, आनन्दाश्रम पूना, १८९०।
8. तैतरीय उपनिषद्, शांकरभाष्य, आनन्दाश्रम पूना,१८९७।
9. दशश्लोकी, श्रीनिम्बार्काचार्य, चौखम्बा बनारस,१९२७।
10. न्यायकुसुमांजलि,-उदयन, – हरिकृष्णदास अकादमी वाराणसी।
11. प्रपन्नकल्पवल्ली,- निम्बार्काचार्य, रास विहारी शरण, द्वारा प्रकाशित १९४२।
12. परपक्षगिरिबज्र, माधव मुकुन्द, शिवपुर आश्रम, हावडा कलकता ।
13. ब्रह्म सूत्र, शांकरभाष्य,- निर्णय सागर प्रेस बम्बई,१९३८।
14. बृह्दारण्यक, उपनिषद् शांकर भाष्य आनन्दाश्रम पूना १९२७।
15. महाभारत शान्ति पर्व....।
16. वेदान्त रत्न मञ्जूषा, पुरूषोत्तमाचार्य, चौ० बनारस, १९०७ ।
17. वेदान्त पारिजात सौरभ,- निबार्क भाष्य, चौ० बनारस १९१०।
18. वेदान्त दार्शन, द्वैताद्वैत सिद्धान्त, स्वामी संन्तदास बनारस संवत १९८६।
19. वेदान्त कौस्तुभ, श्रीनिवासाचार्य, वृन्दावन.१९३२।
20. वेदान्त तत्त्व बोध, –अनन्तराम, चौखम्बा बनारस,१९०७।
21. वेदान्त कौस्तुभ प्रभा,- केशव काशमीरी भट्ट. दिल्ली, १९२८।
22. श्री निम्बार्क ओ द्वैताद्वैत दर्शन,- **डॉ०** अमरप्रसाद भट्टाचार्य, बंग्ला.१९६६।


**गौंण स्रोत**


1. अद्वैत एवं द्वैताद्वैत दर्शन, **डॉ** ० अभेदानन्द भट्टाचार्य, एस० एस पब्लिशर्स दिल्ली, १९९२।
2. अ हिस्ट्री आफ इण्डियन फिलॉसफी,दासगुप्ता, भाग ३, केंब्रीज यूनि० १९४०।
3. अद्वैत वेदान्त, इतिहास तथा सिद्धान्त, **डॉ** ० राम मूर्ति शर्मा, ईस्ट्रून बुक लिंकर्स दिल्ली,१९८७।
4. इण्डियन फिलॉसफी, एस राधाकृष्णन. भाग २ ।
5. सर्व दर्शन संग्रह, माधवाचार्य, चौ० बनारस,१९६४।
6. शंकरोत्तर वेदान्त में मिथ्या तत्त्व निरूपण, **डॉ** ० अभेदानन्द, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी जयपुर, १९७३।


[40] अ० पर० गिरिवज्रम् ०पृ० ४३८।